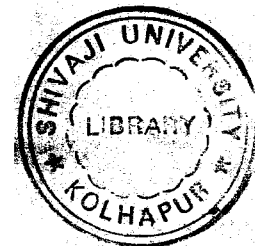


श्रीव शिवाजी

पिरीडा) में शिवाजीय शैलीयिका --

- १) शैलीय शिवाजी का शीव शिवाजी
- २) शैलीय का शिवाजी
- ३) शैलीय का शीव शिवाजी शिवाजीय के शिवाजीय
- ४) शैलीय शिवाजी शिवाजी
- ५) शिवाजीय -- शिवाजीय शिवाजी शैलीय
- ६) शिवाजीय शिवाजी के शिवाजीयों में शैलीयिका
- ७) " शिवाजीय शिवाजीय में शैलीयिका --
 - क) शिवाजीय शिवाजी शैलीय
 - ख) शिवाजीय में शिवाजीय शिवाजी
 - ग) शिवाजीय में शिवाजीय शिवाजी शिवाजी
 - घ) शिवाजीय में शिवाजीय शिवाजी : शिवाजीय - शिवाजीय
 - ङ) शिवाजीय में शिवाजीय शिवाजी, शिवाजीय-शिवाजीय : शिवाजीय

८) शिवाजीय --



संस्कृति शब्द का अर्थ और महत्व --

‘संस्कृति’ शब्द सम ‘उपसर्ग’ के साथ ‘टुक्त्र’ करने धातु से ‘क्तिन्’ प्रत्यय और ‘सम्प्रयुष्यः’ करोतीम्जाणे समवायेव नियम से सुहागम करने पर निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ संस्कार, शुद्धता तथा परिष्कृत होता है। ‘परमारा’ से प्राप्त विचार, मूल्य कला, शिल्प तथा आदत संस्कृति का अंग है। आदर्शों, मूल्यों, स्थापनाओं एवं मान्यताओं का समूह संस्कृति है। संस्कृति के अनुसार ही किसी समाज की जीवन शैली का निर्माण होता है। इस दृष्टि से संस्कृति सामाजिक व्यवहार का एक पैटर्न है, अनेक प्रकार की शिक्षा द्वारा प्राप्त गुणों का समुदाय है, मन और आत्मा की संतुष्टि के लिए किये जानेवाले प्रयासों का समवाय है, जीवन की पूर्णता का अध्ययन है, जीवन को परिष्कृत और सर्वोत्कृष्ट बनाने के लिए मूल्यों का अनुसंधान है, अभिव्यक्ति की आन्तरिक शक्ति है और सभ्यता की आदर्श सखी है।¹

संस्कृति मानव के सम्पूर्ण व्यवहार का ढाँचा होता है, जो अंशतः भौतिक वातावरण से प्रभावित होता रहता है। यह पर्यावरण प्राकृतिक या मानव-निर्मित भी हो सकता है। परंतु मुख्य रूप से यह ढाँचा सुनिश्चित विचारधाराओं, प्रवृत्तियों मूल्यों तथा आदतों द्वारा प्रभावित होता है। जिसका विकास समूह द्वारा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए रहता है। एडवर्ड बी टायलर के अनुसार संस्कृति ज्ञान विश्वास, कला, नैतिकता, न्याय, रीति-रिवाज तथा अन्य प्रवृत्तियों जो समाज का सदस्य होने के कारण अर्जित करता है, इन सबका एक संमिश्रण है।²

संस्कृति का स्वरूप --

संस्कृति और समाज एक - दूसरे के साथ घनिष्ठ संबंध है। सांस्कृतिक विकास सामूहिक प्रयत्नों के परिणाम हुआ करते हैं। यही कारण है कि संस्कृति का विकास मंदर गति से होता है। संस्कृति परम्परागत आचार - विचार और

भौगोलिक परिवेश से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती हैं। यद्यपि परम्परागत उदात्त विचारधाराओं का युगानुकूल संस्कार होता रहता है तथापि संस्कृति नूतन नहीं है, क्योंकि संस्कृति का अस्तित्व नूतन और पुरातन अनुभूतियों के संस्कारों द्वारा निर्मित समुदाय के दृष्टिकोण में निहित है। संस्कृति हमारे दैनिक व्यवहार में कला में, साहित्य में, धर्म में, मनोरंजन और आनंद में पाये जानेवाले रहन-सहन और विचारों की अन्तर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है।

संस्कृति के विकास में आदान-प्रदान का भाव निहित होता है, क्योंकि मानव-मात्र के वैयक्तिक व्यवहार संस्कृति का अंग कभी नहीं बन पाते, जब उन्हें दूसरों द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है, तो वे संस्कृति में समाविष्ट हो जाते हैं। संस्कृति व्यवहारों का इस प्रकार समूह - मात्र नहीं अपितु व्यवहारों का अन्योन्याश्रित होकर एक सद्द व्यवस्था में ढल जाता है। पारंपारिक सम्पर्क संस्कृति के विकास में प्रमुख उपादान है। संस्कृति की शाश्वत दीर्घता पारंपारिक सम्पर्कों पर ही अवलम्बित होती है। डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में हमें किसी सिद्धांत का त्याग इसीलिए नहीं करना चाहिए कि वह अमरातीय है। हमें विदेशी सिद्धांत भी गुणों की कसौटी पर ग्रहण करने चाहिए।³

संस्कृति का क्षेत्र और अभिव्यक्ति के उपादान —

‘संस्कृति’ शब्द से मानव पटल पर एक सुनियोजित श्रेयमयी और प्रेय प्रतिष्ठति व्यापक क्षेत्र को आत्मसात करते हुए खिंच जाती है। इसका संबंध मनुष्य के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, दार्शनिक, साहित्यिक एवं कलागत जीवन के विविध पहलुओं से है। मनुष्य ने विवाह द्वारा परिवार और समाज का निर्माण किया और सामाजिक नियमों के प्रतिपादन द्वारा पारंपारिक सम्बन्धों को दृढ़ बनाया है। सामाजिक सम्बन्धों को व्यापक रूप प्रदान करने के उद्देश्य से ही उसने अपनी निकटवर्ती सम्बन्धों में विवाह करना निषेध समझा। पारिवारिक विस्तार कुल, जाति, राष्ट्र और आंतरराष्ट्रीय स्तर तक पहुँच गया। सामाजिक व्यवस्था के विकास के साथ साथ सांस्कृतिक विकास होता रहा। राजनीतिक संस्था का विकास आज

बिंदु तक पहुँच चुका है, जहाँ मानव-मात्र किसी न किसी शासन सूत्र से आबद्ध है। बौद्धिक चेतना के उर्ध्वशिखर को स्पर्श करनेवाले मानव ने जिस विषय को सामाजिक विकास के लिए उपयोगी समझा, अपना लिया। मनोरंजक आनंदानुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए उसने साहित्य और कला को जन्म दिया और आत्म-वृष्टि के लिए धर्म का विकास किया। सभी ये संस्कृति के संस्कारजन्य अंग हैं।

भारतीय दर्शन के अनुसार संस्कृति के पाँच अवयव - कर्म, दर्शन, इतिहास, वर्ण तथा रीति - रिवाज - हैं।^४ बाबू गुलाबराय संस्कृति का विस्तृत क्षेत्र मानते हुए उसके अंतर्गत साहित्य, संगीत, कला, दर्शन, धर्म, लोकवार्ता तथा राजनीति का समावेश करते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि संस्कृति की अभिव्यक्ति इतिहास, समाज-संगठन, राजनीति, धर्म, दर्शन, शिक्षा कला और साहित्य में होती है। डॉ. सरनामसिंह शर्मा का कथन है -- "सभ्यताओं का विकास और विनाश हो सकता है, धर्मों का उत्थान-पतन हो सकता है, पर संस्कृति का मौलिक रूप चिरन्तन और चिरस्थायी है। संस्कृति और सभ्यता दोनों में काफी अंतर है, परंतु वे एक-दूसरे से असमृत्त रह ही नहीं सकती हैं, क्योंकि किसी भी राष्ट्र के सांस्कृतिक पहलुओं के विकास में देश की सभ्यता के अन्तर्निहित भेद को स्पष्ट करने के लिए दोनों की तुलना करना आवश्यक होगा।"^५

संस्कृति और सभ्यता --

प्राचीनकाल में सभ्यता और संस्कृति एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते रहे, परंतु आज यह स्वीकार हो गया है कि, सभ्यता का तात्पर्य यह है - उन अविष्कारों, उत्पादन साधनों तथा सामाजिक - राजनीतिक संस्थाओं से है, जिनके द्वारा मानव जीवन - पथ सरल, सुलभ और स्वतंत्र बनता है। परंतु संस्कृति हमारे चिंतन - मन और कलात्मक सृजन की उन क्रियाओं से संबंधित है, जो परीक्षा रूप से जीवन को समृद्ध बनाने वाली हैं। संस्कृति वह गुण है जो हममें व्याप्त है और सभ्यता संवरने की वह कला है जो हमारे पास है। संस्कृति के मूल में सभ्यता का निवास होता है। रहन सहन की सभ्य अवस्था का अनुभव होने पर मनुष्य संस्कारवान बनने लगता है।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि संस्कार ऊपर से लादा हुआ लादा है, अपितु मानव के अन्तर्मानस में निहित संस्कार अनुकूल वातावरण में सक्रिय हो जाते हैं। भोजन, वस्त्र, महल, मोटर, वायुयान आदि पार्थिव पदार्थ सम्यता या कुलीनता के उपकरण हैं। परन्तु भोजन करने एवं वस्त्र पहनने की कला, महल बनाने और मोटर तथा वायुयान चलाने के कौशल में संस्कृति समाहित रहती है। रामधारी दिनकरजी के अनुसार "संस्कृति सम्यता की अपेक्षा महीन चीज होती है। यह सम्यता के भीतर उसी तरह व्याप्त रहती है, जैसे दूध में मक्खन या फूलों में सुगंध।" ६

संस्कृति अपने आप में सूक्ष्म तत्व है और सम्यता स्थूल तत्व है। एक का सम्बन्ध आत्मा से है तथा दूसरी का भौतिक शरीर मात्र से। इसीलिए संस्कृति का विनाश आसानी से नहीं हो सकता और सम्यता विनाश हो सकती है। संस्कृति का जन्म नहीं होता अपितु आत्मा की तरह आजन्मा है और सम्यता युगानुकूल नूतन देह धारण किया करती है।

साहित्य और संस्कृति --

संस्कृति के अंतर्गत चेतना और व्यवहार दोनों का सामंजस्य रहता है। व्यवहार हमारे आदर्शों का निर्माण करते हैं और चेतना सृजनात्मक क्षमता या कलात्मक अनुभूतियों को संप्रेक्षित करनेवाली कला का रचना करती है। सांस्कृतिक चेतना का सृजनात्मक स्वल्प धारण करना विशेष महत्वपूर्ण है। किसी जाति के कलात्मक या सृजनात्मक प्रयत्नों का उन्मेष संस्कृति के अंतर्गत ही जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि साहित्य संस्कृति का वाहन है। "दर्शन का सत्य जब सौन्दर्य के संयोग से सज्जित होकर अपने शिवत्व की अभिव्यक्ति के लिए मंच उठता है, तो निश्चित ही उच्चकोटि के साहित्य की सृजना होती है।" ७ इसमें संस्कृति की मनोरम झाँकी अपने पूर्ण वैभव के साथ भावनाओं इतिहास का परिचय देता है। डॉ. राजेन्द्र प्रसादजी के अनुसार "साहित्य मानव-जाति के उच्च से उच्च और सुन्दर से सुन्दर किवारों तथा भावों का वह गुच्छ है, जिसकी बाहरी सुन्दरता और भीतरी

सुगन्धि दोनों ही मन मोह लेते हैं। कोई जाति तब तक बड़ी नहीं हो सकती जब तक उसके भाव और विचार उन्नत न हों। जब भाव और विचार उन्नत होंगे, तब उनका विकास उस जाति के साहित्य के रूप में ही हो सकता है।⁶

संस्कृति मनुष्य के धर्मगत वातावरण और संस्कारों से प्रेरित हुआ करती है। इस दृष्टि से यह कहा जाता है कि साहित्य समाज, धर्म एवं कला परस्पर पृथक होते हुए भी संश्लिष्ट है। मनुष्य के मानसिक विकास के विविध आयामों में संस्कृति अपना विस्तृत रूप धारण करती है, जिसे प्रकाश में लाने का कार्य साहित्य करता है।⁷ डा. सरनामसिंह शर्मा ने साहित्य को संस्कृति का विकास कहकर उसे अतीत का प्रतिबिम्ब तथा अनागत का प्रदीप माना है।⁸ साहित्य तो एक ऐसा माध्यम है जो देश की संस्कृति को एक सूत्र में बाँधता है। किसी भी देश की संस्कृति को समझने के लिए वहाँ के विभिन्न शास्त्र, विद्या, कला, प्रयोग आदि को जानना भी आवश्यक होता है। परम्परा और प्रयोग के परस्पर स्तुलन द्वारा मानव-जाति ने अपनी संस्कृति तथा साहित्य का निर्माण किया है। स्पष्ट है कि मानव-जीवन के लिए साहित्य और संस्कृति नितांत आवश्यक हैं। किसी एक अभाव में जीवन का सर्वांगीण विकास होना असंभव है और मानव जाति का सौन्दर्य बोध एवं मूल्य-बोध को आगत के लिए संचित भी नहीं किया जा सकता है।

उपन्यास - साहित्य और संस्कृति --

कला या साहित्य का उद्देश्य होता है जीवन को विविध आयामों में उद्घाटित तथा स्थापित करना। साहित्य में जीवन मूल्य अथवा जीवन दर्शन भिन्न भिन्न आयामों में विश्लेषित तथा संश्लेषित हुआ करते हैं। इस संदर्भ में सम-सामयिक साहित्य में उभरनेवाली कुण्ठा, अराजकता, निराशा, विषटन, घुटन, अनास्था तथा तोड़-फोड़ वाली प्रवृत्तियों को पहचाना जा सकता है। विद्रोही मानव के विद्रोह ने सांस्कृतिक संक्रमण की स्थिति उत्पन्न की, जिससे सांस्कृतिक मूल्य रह गये। लेकिन यह दृष्टव्य है कि साहित्य में मानव के मूल्य-बोध और सौन्दर्य बोध दोनों का समावेश रहता है। किसी देश या जाति की सौन्दर्यबोध की व्यापकता पर कलागत व्यापकता निर्भर हुआ करती है।

उपन्यास ने यथार्थवादी पंजी दृष्टि के कारण ही साहित्यिक विधाओं में अपना मूर्धन्य स्थान बना लिया है । आज के युग जीवन की संस्कृति को वास्तविक संरक्षण वही दे सकता है । वैसे साहित्य के व्यापक परिवेश में संस्कृति सुरक्षित रहती है । साहित्य कला का एकमात्र ऐसा माध्यम है जहाँ संस्कृति की रक्षा संभव होती है । प्रत्येक कलाकृति स्थापत्य कला है, मूर्तिकला है, चित्रकला या नृत्य कला अथवा चाहे संगीत कला ही क्यों न हो - सांस्कृतिक ख्याती सँजोने और वृद्धि करने में साहित्य के समकक्ष बानी है । साहित्य में भी उपन्यास अनंत विकास द्वारा समष्टिगत साहित्य के समकक्ष पहुँच गया है । इसीलिए कहा जाता है कि उपन्यास आज की सम्यता और संस्कृति की महत्वपूर्ण उपलब्धि है । जीवन को समग्र रूप से चित्रित करने की कला इसने ही पाई है । आज का उपन्यास साहित्य युगोपे संस्कारों से आक्रांत नहीं, अपितु संस्कृति से अपना गहरा रिश्ता जोड़कर अपने सम्य के सांस्कृतिक तत्वों की अभिव्यक्ति में आतुर दिखाई पड़ता है, यही कारण कि उपन्यास साहित्य को समझने के लिए तत्कालीन संदर्भों में किहंगावलोकन करना आवश्यक होता है । वर्माजी के उपन्यासों की सांस्कृतिकता का अध्ययन इसी परिप्रेक्ष्य में आता है ।

भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में सांस्कृतिकता --

भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों का प्रतिपाद्य दीर्घकाल की सांस्कृतिकता अपने में समाहित किये हैं । उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में एक नूतन सांस्कृतिकता का प्रकाश भूले बिसरे चित्र में दिखाई पड़ता है । पाश्चात्य शिक्षा दीक्षा ने भारत में शिक्षित और अशिक्षित दो भिन्न सांस्कृतिक वर्गों का निर्माण किया । एक ओर भौतिक साधनों से संपन्न शहरों में रहनेवाले और आधुनिक कहे जानेवाले, शिक्षित वर्ग की संस्कृति का विकास हुआ तो दूसरी ओर साधनहीन, गँवों के कठोर जीवन, अन्धविश्वास, भौतिक असुविधाओं में पलनेवाले अशिक्षित - वर्ग की सांस्कृतिक बेतना विकास न कर सकी । इस प्रकार दो वर्गों की सांस्कृतिक बेतना ग्राम्य - संस्कृति और नागर - संस्कृति के रूप में विभाजित हो गयी । पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त नव्युक्त जनता और जन - संस्कृति

को उपेक्षित दृष्टि से देखने लगे । परिणाम स्वल्प दोनों में सदा-सदा के लिए संघर्षों वातावरण अपने आप उत्पन्न हो गया ।

भगवतीचरण वर्मा के 'मूले बिसरे चित्रे', 'टटे मटे रास्ते' और 'सीधी सच्ची बातें' उपन्यासों में सन १८८५ से लेकर १९४८ ई. तक की सांस्कृतिकता चेतना अभिव्यक्त हुयी है । इनमें पाश्चात्य और प्राच्य सांस्कृतिक संघर्ष, विश्व-बन्धुत्व की भावना, नूतन सांस्कृतिकता अम्युदय और मानवतावादी विचारधारा की प्रतिष्ठा का सशक्त आवाहन सुनाई पडता है । सन १९४८ से १९६२ का समय भारतीय सांस्कृतिक उपलब्धियों का युग रहा है । 'प्रश्न और मरिचका' उपन्यास इसी की अभिव्यक्ति करता है । 'सामर्थ्य और सीमा' तथा 'स्वहिं च्वाक्त गोसाईं' स्वातंत्र्योत्तर काल की सांस्कृतिकता के विकास और -हास के सुफुट चित्र हैं ।

वर्तमान भारत में विज्ञान, औद्योगिक-आर्थिक व्यवस्था, राष्ट्रियता तथा जनतांत्रिक भावना ने अभिनव संस्कृति के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया । व्यक्तिवादी विचारधारा के उन्मेष से प्रत्येक वर्ग की अपनी विचारधारा दूसरे से भिन्न हो गयी है । शोषक एवं शोषित वर्ग की सांस्कृतिक मान्यताएँ परिवर्तित होनी स्वाभाविक थी । इसलिए उनमें आमूल परिवर्तन उपस्थित हुआ, क्योंकि 'भारतीय विभिन्न दिशाओं में सौचता है । उसमें विचार, अनुभव तथा कर्म में सामंजस्य तथा संतुलन नहीं आ पाता'। युगीन परिस्थितियों के प्रभाव से अध्यात्मवाद का स्थान भौतिकवाद ने ले लिया । वर्माजी ने अपने युग के आस्था और विश्वास को युगीन जनजीवन की कसाटी पर कसकर बौद्धिक रूप से नवीन सांस्कृतिक चेतना के रूप में समुपस्थित किया है ।

'चित्रलेखा' उपन्यास में सांस्कृतिकता --

पाश्चात्य सभ्यता और औद्योगिक व्यवस्था ने प्राचीन भारतीय आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन उपस्थित किया । प्राचीन आर्थिक व्यवस्था का मुख्य आधार कृषि-कर्म था । सांस्कृतिक दृष्टि से आज का युग मूल्यों के विघटन और संक्रमण का

हैं। मध्ययुग में धर्म सांस्कृतिक एवं सामाजिक जीवन का दिशा - निर्देशक था।

औद्योगिक आर्थिक व्यवस्था ने आधुनिक संस्कृति के निर्माण में कम सहयोग नहीं दिया, जिसका प्रतिनिधित्व पेंजीपति वर्ग ने किया। उत्पादन एवं मुनाफा के लालच में उसने क्लान को प्रश्रय दिया और पेंजी पर व्यक्तिगत अधिकार प्राप्त करने के लिए वह जनतांत्रिक व्यवस्था को प्रोत्सहित करता रहा। फलतः दो सांस्कृतिक वर्गों - अभिजात्य और जनसंस्कृति - का निर्माण हुआ। 'चित्रलेखा' उपन्यास में इसकी अभिव्यक्ति हुयी है।

अभिजात्य वर्ग की संस्कृति --

सामाजिक वर्गों एवं युगीन मानवीय मूल्यों को ध्यान में रखते हुए यदि सांस्कृतिक वर्गीकरण किया जाय तो भिन्न सांस्कृतिक ईकाइयों सामने आती हैं - पहला है अभिजात्य वर्ग जिसमें उच्च तथा मध्यम वर्ग आते हैं और दूसरा सामान्य विशाल जनता का समूह, जिसे जनसंस्कृति की संज्ञा दी जाती है।

प्रेमवन्दोत्तर उपन्यासों में वर्माजी के साहित्य में अभिजात्य संस्कृति का चित्रण स्थूल खाके में सूक्ष्म रंगों की परिष्कृत अभिव्यक्ति के साथ हुआ है। लेकिन उनके उपन्यासों के प्रायः चरित्र कामजनित पीडा से आक्रान्त हैं। काम उनकी प्रमुख समस्या है। दूसरी प्रमुख विशेषता यह है कि ये चरित्र अपना स्वस्थ पारिवारिक जीवन निर्वाह नहीं कर पाते हैं, अपितु उनमें निरंतर एक अनिर्णय तथा भ्रष्टाचार की स्थिति द्रष्टव्य है। वस्तुतः तटस्थ रूप से वर्माजी इस सांस्कृतिक रूढ़ि का विवेचन किया है। यद्यपि युगीन उपन्यासकारों की तरह न तो वे कुण्ठाग्रस्त हैं और न अभिजात्य वर्ग की संस्कृति का चित्रण ही उनका उद्देश्य है। यही कारण है कि वह अपने चित्रण में तटस्थ हैं।

'चित्रलेखा' उपन्यास में ऐतिहासिक परिवेश की ओर से अभिजात्य संस्कृति के मंदिर क्लान का चित्रण हुआ है। बीजगुप्त, सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य का

एक महासामन्त है। चित्रलेखा, एक विधवा नर्तकी है, जो अपना स्वच्छन्द जीवन क्लृप्त की मादकता में, शराब के नशे में और यौवन के उन्माद में बीजगुप्त के साथ प्रेम - भोग में व्यतीत करती है। बीजगुप्त महाप्रभु रत्नाम्बर का शिष्य था और पाटलिपुत्र की सर्वसुंदरी चित्रलेखा का अनन्त प्रेमी। उदाम यौवन की तरंगों में बहते हुए भी उसमें अन्यनता है तथा वासना के अनन्य प्रेम में लय होना उसके जीवन की संजीवनी है।

चित्रलेखा एक विधवा ब्राह्मण युवती है। सबसे पहले उसके लिए प्रेम ईश्वरीय था, जो उसने अपने पति से किया था। उस प्रेम में पति के प्रति निःसीम भक्ति और पवित्रता थी।¹¹ इसके बाद उसने कृष्णादित्य से प्रेम किया, इस बार प्रेम देवी न था, प्राकृतिक था। इस बार प्रेम में भक्ति न थी केवल आत्मविस्मरण था। कृष्णादित्य की मृत्यु के बाद उसके जीवन में तीसरा व्यक्ति बीजगुप्त प्रवेश करता है। इस बार चित्रलेखा ने प्रेम में केवल पिपासा और कभी - कभी आत्म - विस्मरण का अनुभव किया, आत्मबलिदान का नहीं। इस बार सिर्फ चित्रलेखा ने प्रेम की मादकता को देखा।

सामन्त बीजगुप्त के बारे में महाप्रभु रत्नाम्बर का कहना है कि बीजगुप्त भोगी है, उसके हृदय में यौवन की उमंग है और आँखों में मादकता की लाली उसकी विशाल अट्टालिकाओं में भोग - क्लृप्त नाचा करते हैं, रत्नजटित मदिरा के पात्रों में ही उसके जीवन का सुख है ईश्वर पर उसे विश्वास नहीं स्वर्ग तथा नरक की उसे कोई चिन्ता नहीं। चित्रलेखा अपने ऐसे प्रेमी बीजगुप्त से कहती है --¹² कुमारगिरि के जीवन का लक्ष्य है कल्पना का शून्य और हम दोनों के जीवन का लक्ष्य है मस्ती का पागलपन। प्रियतम।¹³ परंतु बीजगुप्त के लिए प्रेम एक आत्मिक सम्बन्ध होने के कारण अमर है, वही चित्रलेखा के लिए प्रकृति का भाव है - प्रेम और जिससे परिवर्तनशील है। कदाचित यही कारण है कि नर्तकी चित्रलेखा अपने को योगी कुमारगिरि की भोग सामग्री बनाती है। बीजगुप्त उसे अपनी जीवन - संगिनी बनाकर उध्दार करता है।

चित्रलेखा उपन्यास का ऐतिहासिक अवगुंठन उठाकर देखें तो उसमें समग्र रूप से आज की अभिजात्य संस्कृति का परिचय मिल जाता है। चित्रलेखा का रथ बीजगुप्त के द्वारा पर रक्का उस समय संध्या हो गयी थी। दिन की भयानक गरमी के बाद पाटलिपुत्र की सड़कों पर सामन्तों के रथ उमड़ पड़े थे। फूलों के हार लिए मलिन युवतियाँ सामन्तों के हार पहना रही थीं -- सुवासिनी तथा शीतल शर्बत के पात्र धनी युक्त तथा युवतियों के होंठों का चुम्बन कर रहे थे। चारों ओर उल्लास और विलास था।^{१३} अट्ट प्रेम होते हुए भी चित्रलेखा और बीजगुप्त दोनों स्वस्थ पारिवारिक जीवन का निर्वाह नहीं कर पाते।

अभिजात्य - वर्ग सांस्कृतिक दृष्टि से सर्वाधिक असंस्कृत और नैतिक दृष्टि से पतित होता है जो केवल अपना स्वार्थ और अपने अहम की रक्षा में तल्लीन रहता है। चित्रलेखा भी अपनी अहम की रक्षा करने में तल्लीन रहती है। अभिजात्य वर्ग के लिए कला साधना समय व्यतीत करने और काम विलास की तृप्ति का साधन है। चित्रलेखा जिसका पहला विवाह हो चुका था। अपने पती के साथ वह निःसीम प्रेम करती थी। उसके मर जाने के बाद कृष्णादित्य से विवाह कर लेती है। फिर जब वह पुनः विधवा हो जाती है तो अपनी कला साधना में रत होती है। बीजगुप्त से प्यार करती है। इसी तरह नृत्य करना और बीजगुप्त के साथ काम वासना में डूब जाना चित्रलेखा का समय व्यतीत होता है।

चित्रलेखा में व्यक्तिवादी विचार --

व्यक्तिवादी विचारधारा का अभिप्राय व्यक्तिवादी जीवन दर्शन होता है। समाज में रहते हुए व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को अक्षुण्ण रखना चाहता है। सामाजिक मानव अपने व्यक्तित्व को समाज में विलीन कर देता है और व्यक्तिवादी समाज में अपने व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित करता है। पदुमलाल पन्नालाल बखशी के मतानुसार 'संसार की सबसे बड़ी पहली है, एक व्यक्ति का व्यक्तित्व और संसार की सबसे बड़ी समस्या है व्यक्तित्व की समस्या। एक स्थान में व्यक्ति सबसे पृथक् होकर अपने

व्यक्तित्व की रक्षा के लिए सचेष्ट रहता है और दूसरे स्थान में परिवार, समाज, जाति और राष्ट्र में सम्मिलित होकर सभी के साथ वह ऐसा सम्बन्ध हो जाता है कि किसी भी स्थिति में वह अपने को सबसे पृथक नहीं कर सकता।¹⁸ व्यक्ति समाज की झंझड़ है तो उसका व्यक्तित्व सांस्कृतिक मूल्यों की चेतनामयी अभिव्यक्ति है। सामाजिक प्राणी होने के कारण व्यक्ति के सम्मुख अपनी सामाजिक संस्कृति के कुछ मूल्य भी होते और दूसरी ओर व्यक्ति मूलतः मानव है, जिसमें मानविय मूल्य भी होते हैं। दोनों के संघर्ष से सांस्कृतिक मूल्यों में संघर्ष की भी स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

वर्माजी के चित्रलेखा उपन्यास में बौद्धिक धरातल पर सांस्कृतिक मूल्यों की परीक्षा की गयी है। चित्रलेखा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में सांस्कृतिक भावा-नुभूतियों का प्रकाशन हुआ है लेखक ने पाप - पुण्य की व्याख्या के लिए दो सांस्कृतिक दृष्टिकोण चुने हैं -- एक तो निवृत्तिमूलक तथा दूसरा प्रवृत्तिमूलक है। भारतीय चिन्तकों ने पाश्चात्य संस्कृति को प्रवृत्तिमूलक संज्ञा दी है तथा भारतीय संस्कृति को निवृत्तिमूलक विशेषाण से सम्बन्ध दिया है। पाप - पुण्य सम्बन्धि मान्यताएँ सार्वभौमिक रूप से सत्य नहीं हो सकती, क्योंकि विभिन्न समाज और संस्कृति में उसकी व्याख्याएँ एक नहीं हैं। बीजगुप्त और कुमारगिरि क्रमशः प्रवृत्तिमूलक और निवृत्तिमूलक संस्कृति के प्रतिक हैं। बीजगुप्त का जीवन भोग-विलास में कटता है और योगी कुमारगिरि सयम और तपस्वी जीवन व्यतीत करता है। दो विभिन्न आदर्शों की परीक्षा के लिए नर्तकी चित्रलेखा की लेखक ने निर्माण किया है। उपन्यास के उत्तरार्ध में भोगी बीजगुप्त वैभवभोग त्यागकर योगी हो जाता है और योगी कुमारगिरि का चरित्र चित्रलेखा के सम्पर्क में आकर प्रष्ट हो जाता है। उपन्यास के अंत में वर्माजी लिखते हैं -- "संसार में पाप कुछ भी नहीं है, वह केवल दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है। प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्रकार की मनःप्रवृत्ति लेकर उत्पन्न होता है - प्रत्येक व्यक्ति इस संसार के रंगमंच पर एक अभिनय करने आता है। अपनी मनःप्रवृत्ति से प्रेरित होकर अपने पाठ को वह दुहराता है, यही मनुष्य का जीवन है। जो कुछ मनुष्य करता है, वह उसके स्वभाव के अनुकूल होता है

और स्वभाव प्राकृतिक है। मनुष्य अपना स्वामी नहीं है, वह परिस्थितियों का दास है - विवश है। वह कर्ता नहीं, वह केवल साधन है, फिर पाप - पुण्य कैसा।^{१५}

इस तरह हम देखते हैं 'चित्रलेखा' में बीजगुप्त और कुमारगिरि के द्वारा उनके व्यक्तिवादी विचार की झोंकी मिलती है। साथ ही श्वेतांग और विशालदेव दोनों को जो पाप-पुण्य के बारे में जानकारी के लिए रत्नाम्बर द्वारा क्रमशः बीजगुप्त और कुमारगिरि के पास भेजना और अपने अपने विचारों का प्रकट करण करना व्यक्तिगत विचार ही है।

'चित्रलेखा' में खान-पान सम्बन्धि विचार --

सांस्कृतिकता में जितना भी विकेवन - विश्लेषण होता है इसके अतिरिक्त कुछ और बातें विशेष महत्वपूर्ण होती हैं, जिनका सम्बन्ध संस्कृति से अनिवार्य रूप में जुड़ा होता है। इस लिए सांस्कृतिकता का अध्ययन में उनकी उपादेयता असंदिग्ध है। शिक्षा, खान-पान, वेशभूषा, आचार-विचार, रीति, रस्म, पर्व-त्यौहार, आमोद-प्रमोद, क्रीडा आदि प्रमुख हैं। सांस्कृतिक दृष्टि से उनका अध्ययन आवश्यक होता है।

संस्कृति समग्र जीवन का समुच्चय है और खान-पान जीवन का अनिवार्य पहलू है। अतः उसका सम्बन्ध संस्कृति और सभ्यता से अभिन्न रूप में जुड़ा हुआ है। भारतीय इतिहास के मौर्यकाल से पूर्व पशुवध-कर्म नृशंस और घृणास्पद समझा जाता था और भोजन में मांस का प्रयोग दिन-पर-दिन कम होता गया। यूनानी निरीक्षकों के अनुसार 'उत्तर-पश्चिम सीमा पार के भारतीयों का भोजन वाकल और स्वादिष्ट परिपक्व मांस था, जो स्वर्णिम थालों में परोसा जाता था। तथा लोग सामूहिक रूप से भोजन करते थे। धार्मिक समारोहों और उत्सवों के अतिरिक्त मद्यपान की प्रथा इस युग में नहीं थी।'^{१६} 'चित्रलेखा' उपन्यास में मौर्ययुगीन खान-पान झोंकी मिलती है। उपन्यास के प्रारंभ में ही चित्रलेखा और बीजगुप्त को सोने के पात्र में मदिरा पिते हुए पाते हैं। आर्यश्रेष्ठ मृत्युञ्जय की पुत्री के जन्म दिवस के समारोह में आमंत्रित अतिथि-

भोजन - गृह में जाकर सुंदरी दासियों के द्वारा परोसा स्वादिष्ट भोजन करते हैं और भोजन करते समय एक-दूसरे से बातचित करते जाते हैं । भोजन एवं खान-पान के इस दृश्य द्वारा मौर्यवंश की सम्पन्नता का परिचय मिलता है ।

चित्रलेखा में वेशभूषा : शृंगार - प्रसाधन --

चित्रलेखा में वर्माजी ने चंद्रगुप्त मौर्यकालीन पाटलिपुत्र नगर की सर्वसुन्दरी नर्तकी की वेशभूषा और शृंगार-प्रसाधन का चित्रण कर तत्कालीन संस्कृति का उद्घाटन किया है । जब नर्तकी चित्रलेखा चंद्रगुप्त के दरबार में नृत्य के लिए हाजिर है तो उसके शृंगार प्रसाधन और वेशभूषा का चित्रण किया है । जब प्रागण के बीचोबीच खड़ी होकर चित्रलेखा सबसे प्रथम चंद्रगुप्त को अभिवादन करती है । तब उसका मुख पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति दिखाई देता है । उसकी लहराती हुयी वेणी नाग की भाँति थी, जो विषा से त्रस्त होकर चन्द्रमा से उसका अमृत छीनने को उससे लिपट गया हो । वेणी में गुथे हुए मुक्ता जाल इस प्रकार शोभित हो रहे थे , मानो चंद्रमा को संकट में देखकर तारकावलि पंक्ति में बंधकर काले नाग से भिड गयी थी । चित्रलेखा की वेशभूषा इस प्रकार थी -- उसके शरीर पर महिन रेशम का दुपट्टा पडा हुआ था, जिसका होना न होना दोनों बराबर थे । उसके नीचे उसकी महिन जरी से कटी हुई रेशम की चोली थी, जिससे उसके सुडाल शरीर की आभा फूट निकलती थी । स्वर्ण - तारों का लहंगा उसने पहना था जो रात्रि के उज्ज्वल प्रकाश में चकाचौंध कर रहा था । रत्नजटित आमूषाणों से वह लदी थी । यह मौर्यकालीन नारियों की वेशभूषा एवं शृंगार प्रसाधन की सामग्री हुयी ।

राजा स्वर्णरचित राजसिंहासन पर आसिन होता था । यह राजसिंहासन तरह - तरह के अलंकारों से आकर्षित रहता था । राजा तथा दरबार के अधिकारी एवं सरदारों के लिए प्रायः रथों का प्रयोग होता था । चित्रलेखा जब बीजगुप्त के द्वार तक जाती है उससमय का वर्णन करते हुए वर्माजी लिखते हैं -- चित्रलेखा का रथ बीजगुप्त के द्वार पर स्का उस सन्ध्या हो गयी थी । फूलों के हार लिए मलिन युवतियों सामन्तों को हार पहना रही थीं - सुवास्ति तथा शीतल शर्बत के पात्र

धनी युवक - युवतियों के हाँठों का चुम्बन कर रहे थे।^{१७} इस तरह भगवत्चरण वर्माजी के 'चित्रलेखा' उपन्यास में मौर्यकालीन संस्कृति की बहुरंगी झोंकी मिलती है।

पर्व - त्यौहार ,आमोद प्रमोद : क्रीडा --

मानव जाति की आदि प्रवृत्ति है कि उसे उत्सव या समारोह बहुत प्रिय होते हैं। जीवन में नीरसता और श्रम की थकावट को दूर करने के लिए मनोरंजन की आवश्यकता होती है। पर्व - त्यौहारों का जन्म इसीलिए हुआ और बाद में उनके साथ धार्मिक कारण जोड़ दिये गये। यह बात निश्चित है कि आनन्दानुभूति में तरह तरह के आमोद प्रमोद के साधनों का प्रयोग कर क्रीडादि द्वारा मनुष्य अपना मनोरंजन कर लेता है।

वैदिक काल से लेकर आज तक विभिन्न प्रकार के मनोरंजन के साधनों का उल्लेख मिलता है जिन से हम युगजीवन से परिचित होते ही हैं साथ ही युग - संस्कृति का भी पता चलता है। वैदिक काल में घृत-क्रीडा, युध्द-नृत्य, रथ धावक और आखेट मनोरंजन के उपादान थे। आगे चलकर समाज में मनोरंजन के साधनों में उद्यान-विहार, जुआघरों, नृत्य-भक्तों आदि का निर्माण हुआ तथा लोकगायन, शतरंज के खेल, नटों की क्रीडाये और पशुयुध्द का प्रवलन था।

आमोद - प्रमोद, क्रीडा आदि का पर्व त्यौहारों के अवसर पर होना विशिष्ट सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है। वर्माजी के साहित्य में पर्व त्यौहारों का वर्णन बहुत कम हुआ है। परन्तु सांस्कृतिक चित्रण में कहीं कहीं पर्व - त्यौहारों के अवसर पर आमोद-प्रमोद के साधनों का उल्लेख हुआ है। 'आखरी दौंव' उपन्यास में जहाँ पर लेखक आधुनिक युग के लोकप्रिय के साधन 'स्निमा' का बहुरंगी चित्रण करता है, वही पर पर्व - त्यौहारों की महत्ता को भी उद्घाटित करता है। 'नवरात्री का पर्व बम्बई में बड़ी धुम-धाम से मनाया जाता है, विशेषता गुजरातियों के घर-घर में गरबा नृत्य होते हैं, उत्सव होते हैं। लोग इस त्यौहार पर खूब मनोरंजन करते हैं। वैसे हिंदुओं में होली-दिवाली और दशहरा ये ही मुख्य त्यौहार हैं।'^{१८}

‘ चित्रलेखा ’ उपन्यास में वर्माजी ने मौर्ययुगीन आमोद-प्रमोद का वर्णन किया है। उद्यानों में विहार करना, सुरा पीना, जल्लूडी, रथधावन, यात्रा करना आदि मनोरंजन के साधन थे। राजदरबारों में सुन्दरी के नर्तन के साथ साथ सारंगी और मृदंग आदि वाद्यों द्वारा मनोरंजन होता था। यशोधरा के जन्म - दिवस पर भी नृत्य के लिए चित्रलेखा वहाँ उपस्थित थी। ‘ चित्रलेखा ’ में वर्माजी बताते हैं कि विशोषा उपलब्धियों या पर्व - त्यौहारों पर युवक - युवतियाँ एकत्र होकर वीणा एवं मृदंग पर तरह तरह के गीत गाते थे और मनोरंजन करते थे।¹¹⁹ यह परम्परा अपने स्वस्थ रूप में आज भी सांस्कृतिक कार्यक्रमों के मात्र से विकास कर रही है, जिसमें संगीत, नृत्य तथा अभिनय का विशिष्ट महत्व रखते हैं।

प्रेमचन्द के पूर्व औपन्यासिक साहित्य में पर्व त्यौहारों और आमोद - प्रमोद के साधनों का विस्तृत वर्णन मिलता है, परन्तु परवर्ती उपन्यास स्थूल के स्थान पर सूक्ष्म की ओर उन्मुख हुआ। वर्माजी के उपन्यासों में संस्कृति के स्थूल रूप - पर्व - त्यौहारों और आमोद-प्रमोद का बहुत कम चित्रण हुआ है।

निष्कर्ष --

भगवतीचरण वर्मा एक आस्थावादी कलाकार हैं, जो जीवन में सदाचार और सत्य को सदैव प्रश्रय देते रहे हों, चाहे न, परन्तु अपने साहित्य में नैतिकता की अवहेलना नहीं करते हैं। जहाँ चित्रलेखा का स्वाल है वहाँ बीजगुप्त, चित्रलेखा और कुमारगिरि के माध्यम से लेखक ने अपने सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा की है। बीजगुप्त भोगी है लेकिन समय आनेपर वह अपना सबकुछ श्वेतांक को अर्पित करता है।

‘ चित्रलेखा ’ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित वर्माजी का एक सफल उपन्यास है। जिसमें पाप-मुण्य की परिभाषा करते हुए वर्माजी ने मौर्यकालीन अभिजात्य संस्कृति का चित्रण किया है। चित्रलेखा जो विधवा ब्राह्मणी है बीजगुप्त पर मोहित है। कुमारगिरि का चित्रलेखा के जीवन में प्रवेश होते ही चित्रलेखा बीजगुप्त को छोड़कर कुमारगिरि की ओर आकृष्ट होती है। लेकिन अंत में योगी

भोगी बन जाता है तब चित्रलेखा पछताती है और वापस बीजुगुप्त के पास आती है ।

वेशभूषा शृंगारप्रसाधन के साधन भी मन को मोहित करनेवाले हैं । चित्रलेखा एवं अन्य दासियों तथा राजा, दरबारियों के वेश-भूषा में भिन्नता है । आमोद प्रमोद क्रीडा एवं त्यौहारों के समय होनेवाले नृत्य, सारंगी और मृदंग तथा वीणा वादन सांस्कृतिक मूल्यों की झोंकी प्रस्तुत करती है ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि भगवतीधरण वर्माजी लिखित 'चित्रलेखा' उपन्यास हिन्दी साहित्य में एक अमूल्य देन है जिसमें लेखक ने सांस्कृतिकता के विभिन्न पहलुओं को उजागर किया है ।



सं द र्भ

- | | | |
|------------------------------|--|---------|
| १. डॉ. रामशाकल पाण्डेय | साहित्य परिचय - शिक्षा और
भारतीय संस्कृति विशोषांक,
संपादकिय | पृ. १७ |
| २. डॉ. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल | भगवत चिरण वर्मा के उपन्यासों में
युग चेतना | पृ. २६६ |
| ३. डॉ. हजारि प्रसाद द्विवेदी | विचार और कर्तक | पृ. १२५ |
| ४. डॉ. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल | भगवत चिरण वर्मा के उपन्यासों में
युगचेतना से उद्धृत - कल्याण, हिंदु-
संस्कृति विशोषांक | पृ. ७६ |
| ५. डॉ. सारनामसिंह शर्मा | साहित्य, सिद्धांत और समीक्षा | पृ. २१ |
| ६. रामधारीसिंह दिनक | संस्कृति के चार अध्याय | पृ. ६५२ |
| ७. डॉ. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल | भगवत चिरण वर्मा के उपन्यासों में
युगचेतना | पृ. २६९ |
| ८. डॉ. राजेंद्र प्रसाद | साहित्य, शिक्षा और संस्कृति | पृ. १० |
| ९. डॉ. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल | भगवत चिरण वर्मा के उपन्यासों में
युगचेतना | पृ. २७० |
| १०. - कही - | - कही - | पृ. २७५ |
| ११. भगवत चिरण वर्मा | चित्रलेखा | पृ. ८२ |
| १२. - कही - | चित्रलेखा | पृ. ३३ |
| १३. - कही - | चित्रलेखा | पृ. ६६ |

१४. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ' हिन्दी कथा साहित्य ' पृ. ८६
१५. भगवत चिरण वर्मा ' चित्रलेखा ' पृ. १७७
१६. डॉ. वैजनाथ प्रसाद शुक्ल ' भगवत चिरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना ' पृ. ३१७
१७. भगवत चिरण वर्मा ' चित्रलेखा ' पृ. ६१
१८. भगवत चिरण वर्मा ' आखिरी दौंव ' पृ. ४२
१९. भगवत चिरण वर्मा ' चित्रलेखा ' पृ. ७२